4. भारतीय संस्कृति और हम

डॉ0 आभा रानी

प्रकृति ने मनुष्य को तीन प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की हैं–

(1) शारीरिक (2) मानसिक या बौद्धिक (3) आध्यात्मिक

इन तीनों प्रकार की शक्तियों का विकास ही संस्कृति का मूल लक्ष्य है। भारतीय संस्कृति की गंगा का उत्स वैदिक वाड्.मय है। वेद भारतीयों के पवित्र धर्म ग्रन्थ हैं। वे इन्हें ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं और स्वतन्त्र और अंतिम प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं वेद कालीन भारतीय आर्यों ने इस शक्तियों के सामंजस्य पूर्ण विकास को अपना लक्ष्य बनाया।

शारीरिक शक्ति के विकास के लिए व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन, ब्रह्मचर्य आदि का विधान किया। मानसिक या बौद्धिक विकास के लिए कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर आदि के ज्ञान द्वारा मानसिक विकास की मनोहर योजना बनायी। प्रकृति, ब्रह्म और जीवन की विवेचना द्वारा आत्मसाक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त कर जीवन–भरण के बंधन से मुक्ति का मार्ग खोज निकाला।

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से हम आर्यों के सांस्कृतिक तत्वों का अनुसंधान आसानी से कर सकते हैं। भारतीय आर्यों ने अनेकता में एकता, ऐहिकता और पारलौक्किता के सुन्दर समन्वय और मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के सानुपातिक, विकास की व्यवस्था द्वारा विश्व की सर्वाधिक पुरातन और सर्वोच्च संस्कृति का निर्माण किया। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक–दार्शनिक, साहित्य, कला, विज्ञान और मनोरंजन के क्षेत्रों में जिन सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर अपना पूर्ण विकास किया वे आज भी अपना अस्तित्व कायम किए हुए हैं।

वस्तुतः वैदिक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध है। यह वैदिक संस्कृति ही आर्य संस्कृति या हिन्दू संस्कृति के नाम से जानी जाती है। भारतीय संस्कृति सतत् प्रवहणशील भगवती गंगा की धारा के समान है। जैसे उसकी पतित–पावनी

धारा मूल में विकसित किसी अज्ञात स्थान से निकल कर अनेकानेक दुरधिगम तथा दुर्गम ऊँचे–नीचे पर्वतों और प्रदेशों से होती हुई, विभिन्न जल–प्रपातों को आत्मसात करती हुई, अन्त में सुन्दर समतल रमणीक प्रदेशों में प्रवेश कर नवीनतर गंभीरता, विस्तार और प्रवाह के साथ बह रही है। ठीक उसी तरह भारतीय संस्कृति की धारा भी किसी प्रागैतिहासिक युग से प्रारम्भ होकर अनुकूल प्रतिकूल विभिन्न परिस्थितियों से गुजर कर, विभिन्न विचार धाराओं को आत्मसात् करती हुई, धीरे–धीरे अपने विशालतर और गम्भीर रूप में आगे बढ़ती हुई, अपने चहुमुखी विकास की ओर अग्रसर है।

युगानुकूल परिवर्तनों से नया जीवन ग्रहण करती हुई, वह हमारी राष्ट्र की संचेतना शिराओं को नई शक्ति से पूर्ण कर रही है। भारतीय संस्कृति की अनेक युगजयीं विशेषताएँ हैं। जैसे 'अनेकता में एकता'' अनेकता में एकता भारतीय संस्कृतिकी मूल प्रथम विशेषता है। सामान्य रूप से देखने पर हमारे देश में इतनी विभिन्नताएँ हैं कि उन्हें देखकर कोई भी आसानी से कह सकता है कि ये एक देश नहीं अपितु कई देशों का समूह है। प्राकृतिक विभिन्नताएँ भी इतनी गहरी नजर आएँगी, जो किसी भी महाद्वीप के अन्दर नजर आ सकती है। हिमालय की बर्फ से ढकी पहाड़ियाँ– एक छोर पर मिलेंगी और जैसे–जैसे दक्षिण की ओर बढ़ेंगे गंगा यमुना, ब्रह्मपुत्र से प्लावित समतलों को छोड़कर फिर, विन्ध्य अरावली, सतपुड़ा, सह्याद्रि, नीलगिरि की श्रेणियाँ के बीच समतल हिस्से रंग–बिरंगे दिखते नजर आएँगे। पश्चिम से पूर्व तक जाने में भी विभिन्नताएँ ही विभिन्नताएँ हैं। कहीं हिमालय की ढंड कभी भी निुष्य को गर्म कपड़ों और आग से छुटकारा नहीं देतीं,तो कही समतल प्रान्तों की जलती हुई गर्मी और लू। कहीं कन्याकुमारी का सुखद मौसम, तो कहीं असम की पहाड़ियों में वर्ष में तीन सौ इंच वर्षा मिलेगी जैसलमेर की तत्पभूमि भी देखने को मिलेगी। ऐसा कोई अन्न–फल नहीं है जो यहॉ पैदा न किया जा सके। ऐसा कोई खनिज पदार्थ नहीं, जो यहॉ के भू–गर्भ में न पाया जाता हो और न कोई ऐसा वृक्ष या जानवर है, जो यहॉ के जंगलों में ने मिले। इसी तरह मुख्य–मुख्य भाषाएँ भी कई प्रचलित हैं और बोलियों की तो कोई गिनती ही नहीं। क्योंकि यहाँ एक कहावत मशहूर है–

'कोस कोस पर बदले पानी चार कोस पर बानी'

भिन्न–भिन्न धर्मों के मानने वाले भी, जो सारी दुनिया के सभी देशों में बसे हुए हैं, यहाँ भी थोड़ी बहुत संख्या में पाए जाते हैं। जिस तरह यहॉ की बोलियों की गिनती आसान नहीं है, उसी तरह यहाँ धर्मो के संप्रदायों का गिनना भी आसान नहीं। इन विभिन्नताओं को देखकर अगर अपरिचित आदमी कह उठे कि यह एक देश नहीं अपितु अनेक देशों का समूह है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। क्योंकि ऊपर से देखने वाले को, जो गहराई में नहीं जाता, उसे भिन्नताएँ ही देखने को मिलेंगी। किन्तु विचार

करके देखा जाय तो इन विभिन्नताओं की तह में एक ऐसी समता और एकता फैली हुई है, जो अन्य विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है, जैसे माला के धागा में मोती पिरोए होते हैं। माला से मोतियों को अलग नहीं किया जा सकता। आज इस माला का धागा समय और परिस्थितियों के वशीभूत हो कहीं–कहीं से गल रहा है और कुछ मोती गिरने की स्थिति उत्पन्न हो रही है। आज जरूरत है फिर एक मजबूत धागे की जो इन मोतियों को अपने में पिरो कर सुन्दर माला बनी रहने दे सके। सभी भारतीय इस माला के मोतियों को बिखरने नहीं देना चाहते हैं और मजबूत–धागा जुटाने के प्रयास में लगे हुए हैं।

समन्वयात्मकता भारतीय संस्कृति की दूसरी अपनी विशिष्टता है। समन्वय की भावना भारतीयों में वैदिक काल से चली आ रही है और आज भी यह भावना कायम है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि आर्यों के अतिरिक्त यहाँ दस्यु पणि आदि भी निवास करते थे। आर्यों से इनका संघर्ष होता रहता था। इसके बावजूद भी आर्यों द्वारा दस्युओं तथा अन्यों को अपनी संस्कृति में आत्मसात किया जाना एवं आपस में सिद्धान्तों का आदान–प्रदान किया जाना, समन्वयात्मकता का ही प्रमाण है।

पौराणिक हिन्दू धर्म ने अपने कट्टर शत्रु बौद्ध धर्म के मूल तत्वों को अपने में आत्मसात करके महात्मा बुद्ध को अपने चौरासी अवतारों में शामिल करके समन्वयात्मकता का परिचय दिया।

इसी समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण इस्लाम जैसे विरोधी धर्म के आ जाने पर भारत में राम–रहीम की एकता का उद्‌घोष भारतीय संस्कृति की ही विशिष्टता है।

आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। समाज में विभिन्न क्षेत्रों में भौतिक समद्धि और सुख भोग के साधनों की पूर्ति के साथ आत्मसाक्षात्कार का प्रयत्न भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है। दुखों से निवृत्ति भारतीय जीवन का महान उद्देश्य है। दर्शन का मुख्य लक्ष्य भी आत्मसाक्षात्कार है।

अध्यात्म का अर्थ है– ईश्वर, जीवन और प्रकृति पर विचार। वेदान्त के अद्वैत के आधार पर एक आत्मतत्व ही सत्य है, जिसे दार्शनिक परिभाषा में ब्रह्म कहते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म सत्य है, जीवन उनका ही एक अंश है (ईश्वर अंश जीव–अविनाशी) प्रकृति मिथ्या है। उस तरह ईश्वर में ही जीवन और प्रकृति समाहित हो जाते हैं। संसार की क्षणभंगुरता, नश्वरता और मोक्ष (आत्मसाक्षात्कार) की तो यह दशा है कि इस देश की गली–गली में भिक्षुक (भिखारी) तक इनके गीत गाते रहते हैं।

कबीर और नानक जैसे संतो ने अध्यात्म के गहन विषयों—ब्रह्म (ईश्वर) जीव, जगत (प्रकृति) और मोक्ष (मुक्ति) को सामान्य जनों तक पहुँचा दिया। हर भारतीय मोक्ष प्राप्ति को अपना चरम लक्ष्य मानता है। यह आध्यात्मिकता का ही प्रभाव है कि आम आदमी आज भी मुक्ति की चाहत रखता है और अपने आप को बुराइयों से बचाने की चेष्टा करता नजर आता है।

प्रगति शीलता भारतीय संस्कृति की चौथी मौलिक विशिष्टता है। इसी गुण ने उसे सदा युगानुकूल विकसित होने का अवसर दिया है। अनेक विदेशियों का यहाँ आगमन हुआ, किन्तु भारतीय संस्कृति ने उनके प्रभावों को अपने में समाहित कर प्रगति की धारा को कभी स्थिर नहीं होने दिया। भाषा—बोली, रहन—सहन, खान—पान, आचार—विचार, संस्कृति, व्यापार आदि क्षेत्रों में वैश्वीकरण को अपनाया। आधुनिकता को अपने बीच स्थान दिया। हमने देश—विदेश में एक सूत्रता तलवार के जोर से नही अपितु प्रेम और सौहार्द्र से स्थापित की।

मानव के सम्पूर्ण जीवन का सानुपातिक विकास इस संस्कृति की महान विशेषता है। इसमें जीवन के समग्र पहलुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है। इसीलिए जीवेम शरदः शतम अर्थात् स्वस्थ रह कर सौ वर्ष तक जीवन जीने का कामना मानव करता आया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मूल मंत्र भी हमारा दी दिया हुआ है। आज भी मनुष्य स्वस्थ रह कर सौ वर्ष तक की आयु जीना चाहता है। हमारे ऋषियों ने ब्रह्म, जीव, जगत (प्रकृति) की गुत्थी को सुलझा कर उसमें एकत्व के दर्शन का प्रयत्न कराने का प्रयास किया है। वस्तुतः आत्म दर्शन ही भारतीय संस्कृति का निचोड़ है। इसके अनुसार आत्मा को समझ, उसे जीवन—मरण के बंधन से मुक्त कराना ही मानव जीवन का परम ध्येय है। जीवन—मरण की समस्या ने भारतीयों के हृदय पर संसार की क्षणभंगुरता के भाव अंकित किए हैं। इसी नश्वरता में उन्होंने आत्मतत्व को नश्वरता से परे पाया एवं पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर जीवन—मरण की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि जीवात्मा अपने कर्मों के कारण जीवन—मृत्यु के बंधनों में फंस कर जन्म—जन्मान्तर तक विभिन्न योनियों में भटकती रहती है और कष्ट उठाती है। अतएव इसके लिए आवश्यक है कि वह परम तत्व का साक्षात्कार कर अमरत्व को प्राप्त करे एवं आवागमन के बंधन से मुक्त (मोक्ष) हो जाय। इस प्रकार जीवात्मा कष्टों से मुक्त हो जायेगी। आज भी हम भारतीय आवागमन के बंधन से मुक्ति की लालसा के लिए जाने क्या—क्या नहीं करते।

इसीलिए भारतीयों ने ऐकिह और पाललौकिक तत्वों में सामंजस्य स्थापित कर मानव के समग्र जीवन के सानुपातिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। कमोबेश अधिकांश भारतीय आर्थिक, सांस्कृतिक और भौतिक समृद्धि के उपरान्त अध्यात्म की ओर उन्मुख होने

का प्रयत्न करते हैं। आज हमें पता नहीं चल पा रहा है कि हम किस दिशा में जा रहे हैं। हम पाश्चात्य संस्कृति को पसंद करते हैं; या अपनी। वैश्वीकरण के इस दौर में पश्चिमी देशों की प्रभुता सम्पन्न सम्पन्ना का प्रभाव और देश में कुकुरमुत्ते की तरह से उग आए अंग्रेजी माध्यम के स्कूल, कॉलेजों, बढ़ते भ्रष्टाचार, कमरतोड़ मंहगाई, आतंकवाद, नक्सलवाद, प्रान्तवाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, जन संख्या विस्फोट, मानवीय मूल्यों के क्षरण और अनेकानेक समस्याओं से घिर जाने के कारण अपनी सोचने–समझने की शक्ति खोते से जा रहे हैं। उचित–अनुचित का निर्णय आसानी से नही कर पा रहे हैं। एक अजीब से संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। फिर भी भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन पूर्ण सार्थकता के साथ हमारे मानस–पटल पर अपना अमित प्रभाव स्थापित किए हुए है। यही कारण है कि आज आधुनिकता की दौड़ में हम आगे तो जाना चाहते है, किन्तु नैतिक मूल्यों के साथ। आज भी हम कहीं न कहीं अपनी संस्कृति से जुड़ाव रखते हैं और यह संस्कृति अपने विस्तार के साथ निरंतर गतिमान है।